आधे आधे मिलकर पूरे

एक भाव यात्रा

अर्जुन प्रसाद तिवारी 'असिम'

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Arjun Prasad Tiwari 'Asmi' 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions, requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7018-513-5

Typesetting: Sagar

First Edition: June 2025

अपनी बात

सुधी पाठकगण,

आप सब ने गत वर्ष प्रकाशित मेरे प्रथम काव्य संग्रह 'मुस्कान के प्रबंध' को अपना भरपूर स्नेह एवं आशीर्वाद प्रदान किया। यह मेरे लिए सम्मान एवं गौरव का विषय है। उक्त काव्य संग्रह प्रेम विषय पर आधारित था, जिसमें नायक एवं नायिका के दैहिक परंपराओं से परे तथा निश्छल एवं निष्कपट प्रेम संबंधों को विभिन्न आयामों से गुजरते हुए प्रदर्शित किया गया था।

उस पर आप सबसे प्राप्त होने वाली सकारात्मक प्रतिक्रियाएं मेरे लेखन के लिए संबल का कार्य कर रही हैं। कुछ पाठकों एवं वरिष्ठ साहित्यकारों ने समीक्षा के दौरान इसे एक अच्छा शुरुआती प्रयास बताते हुए और भी अधिक सकारात्मक सुधार की बात कही है जिनका मैं हृदय की गहराइयों से स्वागत करता हूँ और उन पर यथा सामर्थ्य अमल करने की अपनी प्रतिबद्धता को स्पष्ट करता हूँ।

मेरे लिए पुनः सौभाग्य का अवसर आया है जब मैं अपने दूसरे काव्य संग्रह 'आधे – आधे मिलकर पूरे' के माध्यम से अपनी उपस्थिति आप सबके के बीच दर्ज कराने आया

हूँ।फिर से एक अवसर मिला है आप सबसे जुड़ने का, आप सबके बीच अपने भावों को उकेरने का, और उनको आप तक पहुँचाने का।

यह काव्य संग्रह भारतीय समाज में एक स्त्री और पुरुष के एक दूसरे के पूरक होने की बात को मजबूती से रखने का एक छोटा सा प्रयास है। पुरुष तथा स्त्री भारतीय समाज की गतिशीलता के दो अलग–अलग पहिए है और प्रत्येक पहिए का अपना अलग महत्व एवं योगदान है। पुरुष का एक स्त्री के जीवन में पुत्र, भाई, प्रेमी, पति और पिता के रूप में क्या महत्व होता है? वह किस प्रकार से इन विभिन्न रूपों में स्त्री के लिए उपयोगी एवं पूरक है? विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए मैने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है, ठीक इसी प्रकार स्त्री एक पुरुष के लिए कभी माँ, बेटी, बहन, प्रेयसी तथा पत्नी बनकर के अपने दायित्वों का जिस प्रकार से निर्वहन करती है एवं सदैव उसको अलंकृत करती है, इसको भी भाव प्रवणता एवं मुखरता के साथ प्रकट करने का प्रयास किया है। भारतीय समाज एक पुरुष तथा स्त्री दोनों के ही इस प्रकार के त्याग, बलिदान और संघर्ष की कथाओं से गुंजायमान है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में एक स्त्री तथा पुरुष के आदर्श स्वरूपों तथा उनके संघर्ष, त्याग एवं बलिदानों का चित्रांकन करने का प्रयास किया गया है। आशा है आप सभी मेरे इस काव्य संग्रह को पहले से भी और अधिक स्नेह तथा आशीर्वाद प्रदान करेंगे। यह भी आशा करता हूँ कि जब आप इस काव्य संग्रह को पढ़ रहे होंगे ठीक उसी समय आप अपने जीवन में आपके लिए एक स्त्री व पुरुष की भूमिकाओं को जीवंत कर रहे होंगे।

अर्जुन प्रसाद तिवारी 'अस्मि'

समर्पण

यह काव्य संग्रह समर्पित है......

इस विश्व के सभी पुरुषों तथा स्त्रियों को उनकी विभिन्न भूमिकाओं जैसे – पुत्र, भाई, प्रेमी, पति और पिता तथा पुत्री, बहन, प्रेयसी, पत्नी तथा माँ के लिए।

यह काव्य संग्रह समर्पित है......

उनके एक दूसरे के पूरक होते हुए स्थापित किए जाने वाले आदर्श स्वरूप को।

यह काव्य संग्रह समर्पित है......

स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही द्वारा एक दूसरे के लिए किए गए संघर्ष, त्याग और बलिदान को।

आभार

सर्वप्रथम बुद्धि, शब्दों एवं सुरों की देवी माँ शारदा के श्री चरणों में नमन निवेदित करता हूँ , जिनके धाम की छाया में रहते हुए उनकी असीम अनुकंपा एवं प्रेरणा से मैं इस कार्य को कर सका। उनकी विशेष कृपा के बगैर यह कार्य किया जाना संभव नहीं था।

मुझे सदैव कुछ नया एवं सकारात्मक करने के लिए प्रेरित करने वाले मेरे पूजनीय माता–पिता, एवं समस्त गुरुजनों के श्री चरणों में मैं नमन करता हूँ।

मैं अपना विशेष आभार व्यक्त करता हूँ डॉ. विकास दवे निदेशक साहित्य एकाडमी म.प्र. शासन भोपाल का, माँ शारदा धाम मैहर के वरिष्ठ साहित्यकार परम श्रद्धेय श्री रामनरेश तिवारी जी का जिन्होंने प्रकाशन से पूर्व इस काव्य संग्रह को समीक्षात्मक शैली में पढ़ा तथा उचित मार्गदर्शन देते हुए इसकी भूमिका लिखकर मुझे आशीर्वाद प्रदान किया।

मैं आभार व्यक्त करता हूँ, मेरे विद्यार्थी जीवन में मुझे हिंदी पढ़ाने वाले पूजनीय गुरु, डॉ. सुनील कुमार मिश्रा, सतना (म.प्र.) का जिन्होंने मुझे हिंदी कविता से जोड़ने के लिए सदैव एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य किया। मेरे अंदर

सृजन का जो बीज है वह आपका ही बोया हुआ है। आपने भी प्रकाशन से पूर्व इस काव्य संग्रह को पढ़कर उसमें आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान किया। आपका आत्मीय आशीष मेरे विद्यार्थी जीवन से आज तक नियमित रूप से मुझ पर बना रहा है।

मैं आभारी हूँ डॉ.अतुल कुमार गर्ग, सतना (म.प्र.) का जो सदैव से ही एक बड़े भाई के रूप में मेरे प्रेरणा स्त्रोत एवं संरक्षक रहे हैं। सदा गतिशील बने रहने की प्रेरणा देने वाली सरिता आपके व्यक्तित्व से होकर बहती है।

मेरी अति आत्मीय घनिष्ठता के साथी एवं अग्रज रूप में सदैव अपनी भूमिका का निर्वहन करने वाले श्री देवेंद्र कुमार पाठक, शाजापुर (म.प्र.) का भी मैं विशेष रूप से हृदय की गहराइयों से आभार व्यक्त करता हूँ। मैं अपनी किसी भी रचना को पूर्ण करने के पश्चात इनके साथ साझा किए बगैर रह नहीं पता।

मैं अपना विशिष्ट आभार सुश्री शालिनी ओचानी, मैहर (म.प्र.) के प्रति व्यक्ति करना चाहूँगा, जिनकी चित्रकला के कौशल से इस काव्य संग्रह का मुख्य पृष्ठ अलंकृत हुआ है।

पार्थ मन को बल देती कृष्ण स्वर सी कविताओं का संच....

आत्मीय बंधु भगिनीगण,

प्रिय अनुज अर्जुन तिवारी अस्मि जी से सूचना मिली कि सद्य प्रकाश्य ग्रंथ 'आधे आधे मिलकर पूरे' अपने प्रकाशन के अंतिम चरण में है। आपसे प्राप्त सूचना से यह ज्ञात हुआ कि बहु प्रतीक्षित यह संग्रह अब छपकर हम सबके हाथों में आने वाला है तो मन की प्रसन्नता कई गुना बढ़ गई। इस ग्रंथ के साथ अर्जुन जी की कलम तो है ही, उस पर सोने पर सुहागा यह कि वे रिश्तों की ऊष्मा को समझने में भी सिद्धहस्त हैं।ये इस ग्रंथ की दो सशक्त भुजाएं हैं।

आप लंबे समय से लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। आपके परिश्रम की यह सुंदर परिणीति अप्रतिम बन पड़ेगी इसमें कोई संशय नहीं। आपकी रचनाओं के विषय चयन हर भारतीय पाठक को लुभाएंगे।

इन दिनों भारतीय परिवार जिस तेज गति से टूट रहे हैं और पाश्चात्य विघटनकारी तत्व हमारे परिवारों को जिस तरह प्रभावित कर रहे हैं उसके चलते यह ग्रंथ निश्चय ही हमारी परंपराओं को पुनः स्थापित करने में मील का पत्थर सिद्ध होगा।

यह ग्रंथ इस बात को सिद्ध करने में सक्षम सिद्ध होगी कि प्रेरक लेखन जब सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार के साथ अवतरित होता है तो पाठक भी उसका स्वस्ति वाचन करते हैं। मैं हृदय से शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको खूब सक्षम बनाएं ताकि आप लिखते रहें।

पुनः बधाई और शुभकामनाओं सहित ...

सदैव सा

डॉ विकास दवे
निदेशक, साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश शासन, भोपाल

मानवीय रिश्तों का ताना-बाना बुनती रचनाएँ

प्रकाशन के पूर्व प्रिय अर्जुन प्रसाद तिवारी 'अस्मि' जी के काव्य संग्रह की पांडुलिपि पढ़ने को मिलना मेरे लिए एक सुखद प्रसंग है। बारह काव्य रचनाओं का गुलदस्ता मानवीय संबंधों की सुगंध से सुवासित है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है – "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

इस कृति के रचनाकार ने स्त्री और पुरुष की विविध भूमिकाओं के आदर्श स्वरूप को स्थापित करते हुए सामाजिक समरसता का ताना–बाना बुना है। पुरुष जहाँ पुत्र, भाई, पति और पिता के रूप में अपने दायित्वों का निर्वहन करता है, वहीं स्त्री एक बहन, बेटी, प्रेयसी, पत्नी और माँ की भूमिका में सदैव वंदनीया रही है। इन दोनों की सकारात्मक, त्याग और समर्पण की भावना से अनुप्रमाणित समाज ही एक श्रेष्ठ और संस्कारवान समाज की संज्ञा प्राप्त कर सकता है। स्त्री

और पुरुष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। धार्मिक मान्यता है कि भगवान शिव के अर्धनारीश्वर रूप की पूजा करने से साधक को शुभ फल की प्राप्ति होती है। स्त्री – पुरुष एक दूसरे के बिना अधूरे हैं।

भाई–बहन के पावन रिश्ते के सौंदर्य से इतिहास जगमगा रहा है। बहन के प्रति भाई के दायित्व बोध एवं उसकी भावनाओं को रेखांकित करते हुए अर्जुन जी कहते हैं–

"तेरे मान की रक्षा करने, जब भी समाज यह मौन रहा
अग्निसुता सी जान के तुझको, आया कृष्ण कन्हैया सा"

इसी प्रकार पुरुष के पौरुष का अभिनंदन करते हुए वह कहते हैं –

"खुद को ही तुम में देखा है, तुम रहे निरंतर दर्पण हो
खुद को उसमें जीवित रखकर, प्रतिपल करते तर्पण हो
कर बेल मनोरथ सिंचित उसकी, फल आशीष के लेते हो
रक्षक उसकी मुस्कानों के, अनगाया एक समर्पण हो"

यद्यपि कवि ने मानवीय रिश्तों के उभय पक्षों को पूरी शिद्दत के साथ अभिव्यक्ति दी है किंतु मुझे जाने क्यों लगता है कि नारी की भूमिका को उन्होंने अपेक्षाकृत अधिक भाव प्रवणता से स्पर्श किया है, शायद मेरी अपनी भावभूमि के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा हो!

महर्षि रमण के शब्दों में – ''पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया और जीव मात्र के लिए अपने हृदय में करुणा संजोकर रखने वाले प्राणी का नाम ही नारी है।''

महादेवी वर्मा ने अपने रेखा चित्र में कहा है – ''मनुष्य को संसार से बाँधने वाला विधाता माँ ही है, इसी से उसे मानकर संसार को न मानना सहज है, पर संसार को मानकर उसे न मानना असंभव ही रहता है।'' माता–पिता के ऋण को कभी अदा नहीं किया जा सकता है।

कैसर –उल– जाफरी साहब कहते हैं –

''घर लौट के रोएँगे, माँ – बाप अकेले में
मिट्टी के खिलौने भी सस्ते न थे मेले में''

अर्जुन तिवारी जी माँ को नमन करते हुए कहते हैं –

''उसको आभा दी दिनकर की, तुम खुद दल कर सांझ हुई
उसके यश के विस्तारण में, कभी मंजीरा –झाँझ हुई''

डॉ रमा सिंह ने बेटियों पर कहा है –

जिंदगी से लड़ी बेटियाँ
बन गई रोशनी बेटियाँ
सिर्फ वैदिक ऋचाएँ नहीं
पूज्य गंगाजली है बेटियाँ

अस्मि जी की कलम गा उठती है –

''सौभाग्य उदय का हेतु बनी, कोमल दीप्त सुजाता तुम
अंतर्मन की ध्वनियाँ बोली, बिटिया भाग्य विधाता तुम''

इन गीतों के छन्द विधान की या शिल्प की चर्चा न करते हुए रचनाओं में निहित कवि के पवित्र भावों को नमन करके श्री अर्जुन प्रसाद तिवारी 'अस्मि' को शुभकामनाएँ देते हुए

आशा करता हूँ कि इस काव्य कृति को हिन्दी काव्य जगत में भरपूर स्नेह, सम्मान प्राप्त होगा।

रामनरेश तिवारी
वरिष्ठ साहित्यकार
माँ शारदा देवी धाम मैहर (म.प्र.)

पुस्तक के विषय में

स्त्री और पुरुष इस सृष्टि के आदिकाल से ही एक दूसरे के पूरक रहे हैं। किसी एक के अस्तित्व के बिना किसी दूसरे के अस्तित्व की कल्पना करना संभवतः इस विश्व की सबसे बड़ी बेईमानी होगी। वैदिक मान्यताओं के अनुसार भगवान का अर्धनारीश्वर रूप में होना, स्त्री – पुरुष के परस्पर पूरक होने का सर्वमान्य एवं सबसे बड़ा संकेत है।

स्त्री को उसके संपूर्ण जीवन काल में विभिन्न अवस्थाओं में एक विशिष्ट स्वरूप में पुरुष साथी की आवश्यकता होती है। उसकी इस आवश्यकता को पुरुष अपने विभिन्न स्वरूपों जैसे पुत्र, भाई, प्रेमी, पति और पिता के रूप में कर्तव्य बोध और उसके निर्वहन के साथ पूरा करता है। ठीक इसी के समांतर क्रम में पुरुष भी स्त्री को अपने जीवन के विभिन्न चरणों में कभी पुत्री, बहन, प्रेयसी, पत्नी तथा मां के रूप में प्राप्त करता है। एक स्त्री भी अपने इन सभी स्वरूपों के कर्तव्य बोध से भली भाँति परिचित होती है तथा वह भी उतनी ही तन्मयता से कर्तव्य बोध को अपने मानस में स्थापित कर सदैव उसके निर्वहन को तत्पर रहती है। इसी कर्तव्य बोध एवं निर्वहन में स्त्री संघर्ष, त्याग और बलिदान

को अपने एक अनोखे अंदाज में परिभाषित करते हुए इन सब को पराकाष्ठा की ओर ले जाती है।

यह काव्य संग्रह स्त्री और पुरुष दोनों के ही अपनी इस यात्रा में नए कीर्तिमान एवं आयाम स्थापित करने का रेखांकन है।

इस काव्य संग्रह में कुल बारह कविताएं हैं जिसमें एक कविता पुरुष के समेकित रूप के महत्व को प्रदर्शित करती है तथा ठीक इसी प्रकार एक कविता समेकित रूप में स्त्री के योगदान की व्याख्या करती है। पाँच कविताएं एक स्त्री के क्रमशः पुत्री, बहन, प्रेयसी, पत्नी तथा माँ की भूमिकाओं में उसके त्याग तथा समर्पण को प्रदर्शित करती हैं तथा अन्य शेष पांच कविताएं एक पुरुष के क्रमशः पुत्र, भाई, प्रेमी, पति और पिता होने की स्थिति में उसकी अवस्थाओं तथा प्रत्येक अवस्था में उसके संघर्षों को दर्शाने का प्रयास है।

प्रत्येक कविता के पूर्व उस कविता का केंद्रीय भाव समाहित करने वाला एक पूर्व कथन भी दिया गया है। यह पूर्व कथन कविता की पृष्ठभूमि का दर्पण है, जिसे पढ़कर कविता के विषय एवं कविता के केंद्रीय भाव का अनुमान सटीक तौर पर लगाया जा सकता है। अतः कविता के केंद्रीय भाव एवं उसकी शीघ्र समझ के लिए उस कविता का पूर्व कथन पढ़ा जाना सादर अपेक्षित है।

अर्जुन प्रसाद तिवारी 'अस्मि'

अनुक्रमणिका

अपनी बात... iii
समर्पण..v
आभार.. vi
पार्थ मन को बल देती कृष्ण स्वर सी कविताओं का संच....viii
मानवीय रिश्तों का ताना– बाना बुनती रचनाएँ...................... x
पुस्तक के विषय में...xiv

पूर्वकथन – आश्रय 1
आश्रय... 2
पूर्वकथन – भाग्य विधात्री 5
भाग्य विधात्री.. 6
पूर्वकथन – पढ़ा लिखा है भाई 8
पढ़ा लिखा है भाई 9
पूर्वकथन – अर्जन से विसर्जन तक 11
अर्जन से विसर्जन तक... 12
पूर्वकथन – अवसान.. 15
अवसान.. 16
पूर्वकथन – मरणो में माँ 19

मरणों में माँ 20
पूर्वकथन – मानुष तुम बलशाली निकले 22
मानुष तुम बलशाली निकले 24
पूर्वकथन – तेरा छोर 27
तेरा छोर 28
पूर्वकथन – जरूरी घूँट 30
जरूरी घूँट 31
पूर्वकथन – प्रेमबाग 33
प्रेमबाग 35
पूर्वकथन – शुष्क कंठ की प्यास 37
शुष्क कंठ की प्यास 38
पूर्वकथन – स्मारक 40
स्मारक 41

पूर्वकथन - आश्रय

विधाता ने इस ब्रह्मांड की रचना करते हुए अनेक प्राणियों को उनकी अलग–अलग विविधताओं के साथ रचा है। प्रत्येक रचना अपने आप में महत्वपूर्ण है, फिर भी जब ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति की बात आती है तो निसंदेह मानव जाति का नाम सबसे पहले आता है और उस पर भी विशिष्ट रूप से नारी अर्थात स्त्री को ईश्वर द्वारा रची गई ब्रह्मांड की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा जाता है।

नारी मनुष्य के लिए अलग–अलग रूपों में अलग–अलग प्रकार से महत्वपूर्ण है। वह एक पुत्री, एक बहन, एक प्रेमिका, एक पत्नी और एक मां के रूप में सदैव ही मनुष्य के लिए प्रेरणा रही है और उसकी सफलता में भी सहायक हुई है। उसने विभिन्न रूपों में समय तथा स्थिति की मांग के अनुसार त्याग तथा बलिदान के नए आयाम स्थापित किए हैं और इस प्रकार से मनुष्य के लिए उसका पूरक सिद्ध हुई है।

यह कविता नारी के समस्त रूपों को समेकित रूप से समर्पित है इसमें कवि संपूर्ण नारी जाति को संबोधित करते हुए कहता है ....

आश्रय

नारी तुम से क्या मैं कह दूँ?
खुश रहने की काश वजह दूँ
हर रूप बनी तुम आश्रय मेरा
अब तुम्हें भला मैं कैसे गृह दूँ?

सभी चरण में जीवन के, तुम पूजनीय हर रूप रही हो
जब गलने लगी मुसीबत हम पे, तुम कोमलता की धूप रही हो
मातु, भार्या, भगिनी, पुत्री, हम ऋणी रहे हर रिश्ते में
स्नेह ममत्व नहीं बदली तुम, भले बदलती रूप रही हो
हर बदले रूपों में तुम, नर हित का श्रृंगार बनी
धन्य धन्य हो नारी तुम, कोमल शीतल व्यवहार बनी

सर्वोच्च रूप तुम रही प्रेम का, पन्नाधाय औ' राधा में भी
जीवन पथ में नित्य बढ़ी हो, निर्बाध भी रहकर बाधा में भी
त्यागपत्र देकर स्वेच्छा का, दृष्टांत सदा ही गढ़ने सीखें
सदा खुशी का किया प्रदर्शन, पूरा में भी आधा में भी

कई मर्तबा तुमने थामा, हमें वृहद स्पंदन में
उन्नत मूल्य हमें सौंपे हैं, परिवर्तित करके चंदन में
तुम संबल और तुम ही शक्ति, तुम ही प्रेम और तुम ही विरक्ति
सत्यवान के प्राण में तुम ही, तुम तुलसी के स्कंदन में
श्री राम कथा के महाकाव्य का, प्रारंभिक आधार बनी
धन्य धन्य हो नारी तुम, कोमल शीतल व्यवहार बनी

व्यथित मनुज के जीवन में, प्रतिदिन प्रतिपल लोकहिता तुम
नेत्र नीर से पूर्व जो आए, निर्मल उज्जवल सी वही स्मिता तुम
जब शब्द शून्य हो जाते हैं, नर के जिह्वा मानस में
ऐसे में फिर छोर संभाले, त्वरित दामिनी वाग्मिता तुम

तुमने ही भंडार भरे हैं, अन्नपूर्णा कहलाई तुम
श्वास आखिरी तक साजे घर, ऐसी अद्भुत तरुणाई तुम
खुद खंड खंड में टूटी हो, बेटी, बहन,पत्नी,माँ बनकर
टूट के इन खंडों में भी, हर खंड में बनी इकाई तुम
प्रत्येक इकाई में फिर तुम, गुणकारी उपचार बनी
धन्य धन्य हो नारी तुम, कोमल शीतल व्यवहार बनी

निज पर्णहरित इच्छाओं को, नर हित में अवशोषित करके
फिर उनमें ही जीवन जीना, अपनेपन से पोषित करके
अपनी सब हरियाली खो दी, कतरा कतरा मानुष को देकर
सूखी या फिर हरित हुई हो? यह कभी नहीं उदघोषित करके

शत–शत कर्तव्य निभाती हो, बिजली जैसी त्वरित सी होकर
ध्वनियाँ सुनते ही जाती हो, परियों सम अवतरित सी होकर
गला घोट कर अल्हड़पन का, तरुणाई की हत्या करके
हरियाली उपहार में दी है, पल–पल स्वयं क्षरित सी होकर
तीव्र क्षरण के स्वयं वरण में, निज उर्जा का संचार बनी
धन्य धन्य हो नारी तुम, कोमल शीतल व्यवहार बनी

यक्ष,देव,गंधर्व सभी से, निकली सदा सुभाषित तुम
शक्ति, ज्ञान, धन, वैभव तुम ही, कुछ ऐसी हुई परिभाषित तुम
घोर निराशा के तिमिरों में, जब मार्ग न दिखता पुरुषों को
ऐसे में फिर लोकहितों में, प्रतिदिन हुई प्रकाशित तुम

नर जाति से जुड़कर तुम, सौभाग्य सदा ही जनती आई
सभी बलाएँ उसकी लेकर, दुर्भाग्य से तेरी ठनती आई
वक्ष चीर कर शैल पंक्ति का, निर्मल श्वेत गतिज हो करके
इसी पर्यटन में सदैव ही, तुम झरने सी छनती आई
ऐसे ही तुम छनकर के, मीठी सी जलधार बनी
धन्य धन्य हो नारी तुम, कोमल शीतल व्यवहार बनी

पूर्वकथन - भाग्य विधात्री

भारतीय समाज में बेटी का स्थान बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। बेटी को साक्षात् लक्ष्मी भी कहा जाता है। बेटी किसी भी परिवार का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग होती है तथा यदि किसी परिवार में बेटी नहीं है तो उसे परिवार को अपूर्ण माना जाता है। वह अपनी चंचलता तथा मासूमियत से घर के प्रत्येक सदस्य के दिल में बस जाती है। अपने बचपन से लेकर अपने ब्याहे जाने तक अर्थात उस घर को छोड़ने तक की यात्रा में बेटी प्रत्येक दिल में बस चुकी होती है और जब वह विदा होकर दूसरे घर जाती है तो अपने स्थान पर एक शून्य छोड़ कर जाती है।

प्रस्तुत कविता में एक बेटी के जन्म लेने, उसके विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने, उसके विवाह होने तथा विदाई के उपरांत उसके ससुराल जाने के पश्चात वह किस प्रकार से अपने मायके की जड़ों से जुड़ी रहती है, उन जड़ों को कभी सूखने नहीं देती है, इस पर प्रकाश डाला गया है। बेटी के जन्म से लेकर उसके अपने मायके से विदा होने तक की यात्रा तथा प्रत्येक चरण में घरवालों एवं परिवार वालों से बेटी के जुड़ाव को प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है........

भाग्य विधात्री

तुम्हें लक्ष्मी कहते हैं, कोख निकासी होते ही
सभी मुश्किलें हल हो जाती, तेरे गृहवासी होते ही
कहीं किसी के दिल की धड़कन, कुछ होठों की मुस्कान बनी तुम
किसी का तुम बचपन बन बैठी, कहीं किसी का ज्ञान बनी तुम
कितनों की बंजर धरती को, संतृप्ति के जल दे डाले
समृद्ध किया कहीं आज किसी का, कुछ को उजले कल दे डाले
तीव्र ऊर्जा संचारित की, मन के भाव मुदित से करके
ध्वस्त किया नैराश्य को तुमने, डूबे भाग्य उदित से करके
सौभाग्य उदय का हेतु बनी, कमला, विमला, गायत्री तुम
अंतर्मन की ध्वनियाँ बोली – बिटिया भाग्य विधात्री तुम

अपने नाजुक कंधों पर, यह बैग जो तुमने पहना है
भार नहीं इसमें पुस्तक का, ज्ञान जड़ित ये गहना है
पहन के यह आभूषण तुमने, यश के ऊँचे आयाम गढ़े हैं
सागर की गहराई नापी, अंबर जैसे परिणाम पढ़े हैं
संतुष्ट भाव से तुमको देखे, जो अब तक जिए प्रतीक्षित रहकर
शिक्षित देख तुम्हें लगता है, हुए पूर्ण मनोरथ इच्छित रहकर
मेधा निर्झरिणी आगे बहती, तुम से ही दस्तूरी होकर
ज्ञान चौकड़ी भर भर कूदे, तुम में ही कस्तूरी होकर
संकल्प, ज्ञान की तुम संरक्षक, बुद्धि विनय प्रदात्री तुम
अंतर्मन की ध्वनियाँ बोली – बिटिया भाग्य विधात्री तुम

जीवंत हुआ जहां बचपन तेरा, आँगन दहलीज दीवारों में
तुम ही फागुन तुम्हीं दिवाली, तुम खुद उत्सव त्यौहारों में
जब लांघो तुम वही देहरी, वैवाहिक आबंधों में
छोड़ के अपनी सब आजादी, जाती शत–शत प्रतिबंधों में
यही बड़प्पन तेरा बिटिया, नव्य निभाती संबंधों को
लगी बंदिशें खोली सब पर, खुद पर लेकर प्रतिबंधों को
गत संबंधों को मूर्छा देकर, ना जाने कितना रोती है
शेष रह गई श्वास मालिका, में मोती नए पिरोती है
त्याग समर्पण नाम तुम्हारे, सुख समृद्धि की दात्री तुम
अंतर्मन की ध्वनियाँ बोली – बिटिया भाग्य विधात्री तुम

संबंध पड़े हैं जो मूर्छित से, तेरे मानस के शयन कक्ष में
अक्षुनीर के गिर जाने पर, चौतन्य हुए सब भवन वक्ष में
गर्भ में पोषित हुई जहाँ तुम, एक छोटे से धागे से
तुझे याद आती है माई, सोते स्वप्न में जागे से
याद तुम्हें रहता है सब कुछ, क्या खोकर जनक खिलौने लाए
शीतल हवा बने गर्मी की, सर्दी में गरम बिछौने लाए
पथ में कंटक चुभ जाने पर, लिए पादुका खड़ा था भाई
है तुम्हें याद चलता था कैसे, तेरे संग बनकर परछाई
मूर्छित होते संबंधों की, पल पल जीवन दात्री तुम
अंतर्मन की ध्वनियाँ बोली – बिटिया भाग्य विधात्री तुम

पूर्वकथन - पढ़ा लिखा है भाई

एक भाई के लिए उसकी बहन उसके जीवन के बहुत महत्वपूर्ण किरदारों में से एक होती है। वह उसके बचपन से उसके साथ रहती है। उसके साथ अपने खिलौने, अपनी पुस्तक, अपना भोजन, अपनी हँसी और अपने आँसू भी साझा करती है। साझा करने तक की बात तो फिर भी कम महत्व रखती है लेकिन उससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वह कई बार इन सबको अपने भाई की खातिर बलिदान कर देती है। वह अपने भाई को एक छोटे अवयस्क बालक से लेकर पूर्ण किशोर होने तक उसे देखती हैद्य वह साक्षी होती है उन सब अच्छे बुरे क्षणों की, जो उसके भाई के जीवन का कभी हिस्सा होते हैं। यदि थोड़ा साहित्यिक होकर बात कही जाए तो वह अपने भाई को उस अपरिपक्व बालक से पूर्ण वयस्क किशोर होने तक उसे पढ़ती भी है और उसे लिखती भी है।

प्रस्तुत कविता एक भाई के जीवन में बहन की महत्ता पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

इसमें कवि बहन को संबोधित करते हुए कहता है ......

पढ़ा लिखा है भाई

भ्राता से तेरे नाते में, सागर की गहराई है
जान के इस गहराई को, नियति सदा घबराई है
जब भी उसने तेज धूप की, भ्रात पुष्प कुम्हलाने को
तेरे नेह की उष्म निधि से, खुद नियति मुरझाई है

दोनों ओर लिखा है भाई, फिर सिक्के सभी उछाले सौंपे
शुष्क रखा निज कंठो को, उसे शीतल जल के प्याले सौंपे
अनकही क्षुधा भी उसकी पढ़कर, एक शब्द लिखा तुमने संतुष्टि
रोक के अपने कवलों को, निज मुख गतिशील निवाले सौंपे
यह देख रहा था वहां विधाता, आँख थोड़ी उसकी भर आई
रूंधे कंठ से बोल पड़ा – तुमने पढ़ा लिखा है भाई

तुम लड़ती अधिकार से भगिनी, जीवन सितार को झंकृत करके
निज देती स्वयं खिलौने उसको, उसका उल्लास अलंकृत करके
नतमस्तक करबद्ध रही हो, मांग कुशलता परमेश्वर से
सभी बलाएँ हरती उसकी, अपने आशीष से संवृत करके

नही इकाई कभी रही तुम, तुम भ्राता में आधी हो
आधी होकर भी तुम जैसे, मानद कोई उपाधि हो
निज भूख प्यास श्रृंगार के तुमने, रोज गले ही घोंटे हैं
बिन भावों की चलती फिरती, अद्‌भुत एक समाधी हो
पुष्प समर्पित करता ईश्वर , मुक्त कंठ से करें बड़ाई
रुंधे कंठ से बोल पड़ा – तुमने पढ़ा लिखा है भाई

उसके जीवन का कठिन काल भी, तुझको चुभता शूल सा
पीड़ादायक, कष्टप्रवर्धक, अनियंत्रित प्रतिकूल सा
जड़मति होकर परवशता में, वह यदि अकेला बैठा है
शुभ संकेतों से आई तुम, पत्र लिए तांबूल सा

शीत ऋतु में ऊष्म वस्त्र हो, बरखा में हो छतरी तुम
शयनकक्ष का मखमल है वो, भूमि पड़ी हो कथरी तुम
इकलौती थाली उसे सौंप कर, जी भर संतोष कमाती हो
प्रथम मधुर पकवान है उसके , पश्चात की जूठी पतरी तुम
शेष रह गई इस पतरी से, परमेश्वर ने संतुष्टि पाई
रूंधे कंठ से बोल पड़ा – तुमने पढ़ा लिखा है भाई

बिन सांसों के तेरे सपने, सद्भाव पल्लवित गहने हैं
तुमसे जो स्थापित मानक, इसी लोक में रहने हैं
समता के प्रकरण पर तुम तो, कभी मुखर हो सकती थी पर
निज हित अंबर छोड़के तुमने, त्याग समर्पण पहने हैं

नही सुनी है तुमने ध्वनियाँ, अपने बिलखते बलिदानों की
उसके होठों पर आच्छादित, होती मुखरित स्मिता को देखा
नही रची है मेंहदी तुमने, केश कभी न साजे है
मुरझाते श्रृंगार की तुमने, जलती हुई चिता को देखा
होके दिवंगत जीवनदाता, जिस क्षण तुमसे दूर हुआ
उसी समय से तुमने उसमें, जीवित होते पिता को देखा
तुम ऐसी शक्ति हो जिससे, हारी है पूरी प्रभुताई
रुंधे कंठ से बोल पड़ा – तुमने पढ़ा लिखा है भाई

पूर्वकथन - अर्जन से विसर्जन तक

एक बालिका अपने बाल्यकाल से ही अपने माता–पिता और घर वालों को अत्यधिक प्रिय होती है। अपने भोलेपन और मासूमियत से वह सभी की सांसों में बसती है। अपने बाल्यकाल से किशोरावस्था में आने तक की अपनी यात्रा में वह अपने घर के प्रत्येक सदस्य को अपने अंदर जीती है। उनका स्थान अपने हृदय में आरक्षित रखती है। अब तक के जीवन के सभी पड़ावों को पार करती हुई जब वह किशोरावस्था में प्रवेश करती है तो नैसर्गिक रूप से प्रदान किए गए प्रेम और श्रृंगार के प्रभाव से वह अछूती नहीं रह पाती है। अचानक से किशोरी के जीवन में एक किशोर आता है और उसके हृदय में एक कोना अपने लिए भी आरक्षित कर लेता है। हृदय में होने वाली इस नई प्रविष्टि के साथ ही उसके जीवन में कई प्रकार के मानसिक एवं भावनात्मक बदलाव होते हैं।

प्रस्तुत कविता में किशोरी के हृदय में होने वाले इन मानसिक एवं भावनात्मक बदलावों को उकेरने का प्रयत्न किया गया है।

इसी प्रयास में कवि कहता है......

सबको थोड़ी जीते – जीते, लडकी सब में बंट जाती है
तभी अचानक उसके जीवन, सुंदर घटना घट जाती है
कभी अचानक कोई लड़का, उसके हृदय उतरता है
उसका स्वागत करते–करते, सोया श्रृंगार उभरता है
श्रृंगार से अभिमंत्रित होकर वह, जब अपनी गति बदलती है
सब समीकरण उल्टे पड़ जाते, वह निज नियमों से चलती है
उसमें निज आश्रय वह पाती, उसे ठिकाना देती है
सांसे अपनी वार के उस पर, बन जाती बहुत चहेती है
देकर सांसे अपनी उसको, उसमें जीवन संचार करें
खुद से ज्यादा उसको जी कर, उसे अधिकतम प्यार करें

उसने कई संजोए सपने, स्मित रेखा के स्तर पर
आंख खुली रौशन रातों में, सब नींदे उसके बिस्तर पर
काम न कोई भाता उसको, एकांत ही अच्छे लगते हैं
जिन पलों में वह न हो उनके, देहांत ही अच्छे लगते हैं
क्या खूब तराशा उसने उसको, पत्थर से लेकर संगमरमर तक
नंगे पाँवों से वह दौड़ी, अपने घर से उसके घर तक
इस दौड़ में उसके हिस्से आए, पैरों तले के छाले हैं
रही बिखरती उसमें नियमित, फिर भी उसे संभाले हैं
बिखर – बिखर भी ऊष्मा देकर, अपना जीवन अंगार करें
खुद से ज्यादा उसको जी कर, उसे अधिकतम प्यार करें

संवादों की प्रत्याशा में, जाने कितने पल निकले हैं
उसकी आवाज को सुनकर उतने, प्रश्नों के सब हल निकले हैं
चोरी छुपकर जब वह घर से, उससे मिलने जाती है
दुर्बल होती तुरपाई को, प्रेम से सिलने आती है
आधा हिस्सा उसका अपने, दिल में जीती आई है
आधे को फिर पूरा करके, केवल रीती आई है
प्रेम नदी में तल तक पहुंचे, ऐसी उसकी खूबी है
नहीं मंत्रणा समझे जग की, जब से उस में डूबी है
प्रबल करे तुरपाई को औ' , सबल प्रेम आधार करें
खुद से ज्यादा उसको जी कर, उसे अधिकतम प्यार करें

उससे मिलने की खातिर वह, वक्त से लम्हा छांटेगी
खुद टुकड़ों में बंट जाए पर, कभी न उसको बांटेगी
सांसों की माला में चाहत, के मोती नए पिरोने देगी
होगा ऐसा समय न कोई, जब उसे वो खुद में सोने देगी
बाँध सके उसे आकर्षण मे, ऐसी कोई भीड़ नहीं
उसके ठौर से दूजा कोई, उसको बेहतर नीड़ नहीं
अपने प्रेम से सींचा उसको, भाव अंकुरित दाने बो कर
उसको यथार्थ स्वीकार किया, अपनी सारी मौलिकता खो कर
हृदय तले इन दानों से वह , प्रेम की पैदावार करें
खुद से ज्यादा उसको जीकर उसे अधिकतम प्यार करें

अगर न उससे मिल पाए तो, आंख भरी सी लगती है
उससे मिलने की आशा में, एक शबरी सी लगती है
इंतजार में रखें न धीरज, नक्षत्र तके न चातक होकर
नित खोजे अवसर मिलने के, प्रेम कला स्नातक होकर
पश्चात में उससे मिलने के, हो जाती उसकी आंखें नूरी
उल्लास छिपा न पाए अपना, पल भर में होकर कस्तूरी

इसी भाँति से उसे जिये वो, उसको खुद में अर्जित करके
करती उसका वंदन देखो, खुद को उसे विसर्जित करके
इसी भाँति उसके वंदन से, वह खुद का उद्धार करे
खुद से ज्यादा उसको जीकर उसे अधिकतम प्यार करें

पूर्वकथन - अवसान

कहते हैं कि एक सफल पुरुष के पीछे एक महिला होती है। यह महिला अपने विभिन्न स्वरूपों जैसे – बेटी, बहन, माँ या पत्नी में से किसी भी रूप में हो सकती है। प्रत्येक स्वरूप में उसका सहयोग और प्रेरणा मनुष्य के जीवन की तस्वीर बदलने में उपयोगी होते हैं। जब महिला एक पत्नी के रूप में यह कार्य संपादित करती है तो उसकी प्रेरणा एवं सहयोग की तीव्रता सदैव ही अपने चरम पर होती है। विवाह के बाद पुरुष सही अर्थों में अपने पत्नी के सहयोग के बिना दो कदम भी चलने की स्थिति में नहीं होता है। वह जिस प्रकार से उसके घर की देहरी में प्रवेश करते ही उसके घर को शीघ्रता से अपना बना लेती है वह आश्चर्यजनक है। प्रारंभिक कुछ दिनों में परिधि के आसपास रहने वाली पत्नी कब घर का केंद्र बिंदु बन जाती है पता ही नहीं चलता है। वह अपनी एक विशिष्ट शैली के साथ परिवार की परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करते हुए आजीवन एक पत्ते की तरह मुरझाते हुए तथा सभी को प्रतिबंधों से मुक्त करते हुए स्वयं प्रतिबंधों में कैद हो जाती है।

प्रस्तुत कविता एक पति के जीवन में पत्नी के महत्व को स्थापित करने का छोटा सा प्रयास है।

इस कविता में पत्नी को संबोधित करते हुए कवि कहता है.......

अवसान

एक चौखट से हे नारी तुम, जब दूजी चौखट जाती हो
छोड़के इस चौखट को बिटिया, वहाँ बहू कहलाती हो
अम्मा का तुम सारा दिन थी, सांझढली थी बाबा की
तुम्हें मिले नव आंगन की अब, नूतन नई प्रभाती हो

किसी की तुम पत्नी, बिटिया सी, कहीं किसी की भाभी हो
ज्ञान लक्ष्मी के घर खोलो, तुम ही घर की चाभी हो
तेरे न रहने पर इसको, छत दीवार की संज्ञा थी
घर कहलाती संरचना की, अब आशा और प्रभा भी हो
घर होती इस संरचना के, कण–कण का संज्ञान हो
ओढ़ चुनरिया वधुओं वाली, बिटिया का अवसान हो

सबकी तृष्णा शांत करी है, निज कंठ रखा है सूखा सा
तुंद भरण सबके कर डाले, निज उदर रखा है भूखा सा
श्वास छोड़ती यदि रही हों, कहीं किसी की अभिलाषाएं
प्राण वायु बनकर आई तुम, खुद को सब में फूंका सा

तेरा आभा मंडित चेहरा, तम हर लेता कोने का
फिर सबको अवसर देती हो, बेहतर स्वप्न संजोने का
समृद्धि के वृक्ष को सिंचित, करती भाव समर्पण से
समय निकलता जाता क्रमशः , दुर्भाग्य लताएं ढ़ोने का
दुर्भाग्य दमन तुम करने वाली , दुर्गा शक्ति समान हो
ओढ़ चुनरिया वधुओं वाली, बिटिया का अवसान हो

घोर बलाएँ आने पर तुम, कहीं न पीछे कभी हटी हो
लुटी पतंग हुआ साथी तो, तुम संग में उसकी डोर कटी हो
अनमोल निशानी देकर तुमने, प्रतिकूल समय भी काटा है
वनवास काल में स्वामी के फिर, तुम सीता की पंचवटी हो

कभी रही तुम भ्राता भगिनी, कभी रही हो माता सा
तुमको सब ने नियमित देखा, व्यक्तित्व वही दोहराता सा
प्रथम पंक्ति में सबको करके, तुम खुद अंतिम छोर रही हो
हरित किया तुमने सबको पर, खुद पर्ण रही मुरझाता सा
मुरझाते पत्ते की तुम, दिखती हुई ढलान हो
ओढ़ चुनरिया वधुओं वाली , बिटिया का अवसान हो

तुम बच्चों के खेल खिलौने, मोदक मिसरी मेवा हो
तुम ठहरी बूढ़ों की लाठी, तुम ही उनकी सेवा हो
नेह कहीं आशीष कहीं से, तुमको मिलते रहते हैं
तुम ही शाम बियारी उनकी, प्रातः काल कलेवा हो

लिखा गया हर कोई तुमसे, ऐसी उज्जवल स्याही हो
अपराध बोध से मुक्त करो, तुम ऐसी प्रबल गवाही हो
घर आते ही तुमने सबके, बोझ लिए हैं कंधो पर
यूँ लगता सीमित अर्थों में, तुम गई सभी से ब्याही हो
बोझ लिए इन कंधों पर तुम, लगती नहीं थकान हो
ओढ़ चुनरिया वधुओं वाली, बिटिया का अवसान हो

पोंछ के हर माथे की चिंता, तुमने तिलक लगाया है
तिलक लगे पुरुषार्थ ने तुमको, प्रतिपल शीश झुकाया है
छप्पन भोग की थाल ने तुमसे, अगर कभी भी दूरी की
अनदेखी के कौर को तुमने, खाया और पचाया है

तुम होली का रंग हो उसकी, उजियारा दीवाली का
सर्दी का तुम गर्म बिछौना, दो घूँट चाय की प्याली का
अपमार्जक उसके वस्त्रो का, तुम जुराब की थैली हो
परिवारों की मजबूती में, विकसित स्तंभ प्रणाली का
कुल की बढ़ती दृढ़ता में तुम, शक्ति भरी गठान हो
ओढ़ चुनरिया वधुओं वाली, बिटिया का अवसान हो

पूर्वकथन - मरणो में माँ

माँ पुरुष की जन्मदात्री होती है। एक पुरुष के जीवन में उसकी माँ के महत्व एवं योगदान को कुछ पंक्तियों या शब्दों में बांधा जाना असंभव कार्य है। विपरीत इसके इस कविता के माध्यम से एक बालक के जन्म से लेकर उसके परिपक्व तथा वयस्क हो जाने तक माँ की भूमिका एवं योगदान के कुछ पहलुओं को छूने का प्रयास किया गया है।

माँ जिस प्रकार से विपरीत एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने बेटे को उन्नति के मार्ग पर लाती है, वह जिस प्रकार से अपने खान–पान तथा रहन–सहन को अपने बेटे की प्राथमिकता के आधार पर तय करती है, वह जिस प्रकार से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रमिक की भाँति दिन–रात काम करने को भी तैयार रहती है, इन सबको कुछ पंक्तियों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत कविता उन्हीं सब बलिदानों, संघर्षों तथा त्यागों का आलेख है।

इस कविता में माँ को संबोधित करते हुए कवि कहता है... ...

मरणों में माँ

नारी तुम तो सभी रूप में, मानुष की निर्धारक हो
दर्पण बन तस्वीर दिखाती, उसकी कुशल सुधारक हो
कदम कदम पर उसको लिखती, अपने व्यवहार की स्याही से
मातृ रूप में अलंकार बन, उसका चरित्र श्रृंगारक हो

अंकुर से पौधा बनने तक, सबने उसे पकड़ सींचा है
कहीं किसी ने पत्ते सींचे, कहीं किसी ने धड़ सींचा है
बन पराग उसके फूलों पर, किसी ने खुशबू डाली है
तुमने शूल चुने दामन के, उसको जड़ से सींचा है
शूल रहित और सिंचित करके, लाई प्रगति के चरणों में
जीवित होती आई तुम, प्रतिपल अपने मरणों में

आधा गर्भ में जब वह था तो, आधा मानस चित्त में था
आधा उदर भरण में था तो, आधा सीमित वित्त में था
तेरी सारी विपदाओं में, शून्य रखा प्रतिकूलों में
हित वितरण में अग्र पंक्ति में, वह पूरा संक्षिप्त में था

चयन किया तुमने बेहतर का, भीड़ों में जरा भ्रमिक सी होकर
संसाधन उपलब्ध कराए, अनुशासन में क्रमिक सी होकर
नंगे पांव चली आई हो, उसे छुपाए आंचल में
रही संजोती उसकी सुविधा, जीवन भर तुम श्रमिक सी होकर
जोड़ी सुविधा श्रमदानों से, उसे रखा स्मरणों में
जीवित होती आई तुम, प्रतिपल अपने मरणों में

उसको आभा दी दिनकर की, तुम खुद ढ़लकर सांझ हुई
उसके यश के विस्तारण में, कभी मजीरा झांझ हुई
उसके सारे रोग व्याधियाँ, अपने हिस्से मांगे हैं
आशीष जने हैं तुमने हरदम, कभी न वाणी बांझ हुई

मांगे पूरी की है तुमने, जो लिखी थी उसने ज्ञापन में
अपनी हंसी लुटाई उसकी, खुशियों के विज्ञापन में
नई शाटिका नही ली तुमने, ना पाजेब खरीदी है
खुद से ज्यादा सोचा उसको, अपने जीवन यापन में
वही शाटिका पाजेबें भी, नहीं थी तेरे वरणों में
जीवित होती आई तुम, प्रतिपल अपने मरणों में

खुद को खुद से मुक्त किया है, मातृत्व रचित आसंजन में
ममता से क्षमता बन बैठी, उसके काल प्रभंजन में
पदवेशों के जैसे तुमने, निज स्वाद उतारे चौखट पर
अंगुल अपनी रही जलाती, उसकी चाहत के व्यंजन में

तेरे लिए किसी निर्णय पर, वह कभी रहा आक्रोशित था
उसके सारे आरोहण का, वह स्वयं विजेता घोषित था
भले न उसने ध्यान रखा है, तेरे नैतिक पोषण का
पर तेरे अवरोहण में भी, वह रुधिर कणों से पोषित था
अवरोहण से लिखा है पोषण, तुमने अपने क्षरणों में
जीवित होती आई तुम, प्रतिपल अपने मरणो में

पूर्वकथन - मानुष तुम बलशाली निकले

पुरुष तथा स्त्री इस समाज के दो पहिए हैं जिनसे यह समाज निरंतर गतिशील रहता है। इस गतिशीलता में दोनों पहियों का बराबर महत्व है। दोनों पहियों की गतिशीलता में स्त्री की गतिशीलता तथा उसका त्याग, संघर्ष एवं बलिदान तो बड़ी सहजता से ही दिखता है और देखा जा सकता है किंतु पुरुष का संघर्ष, त्याग और उसका बलिदान इतनी आसानी से देखा जाना थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता है या दूसरे शब्दों में यह कहा जाय कि वह इस समाज का कम गाया जाने वाला नायक है। उसके त्याग, संघर्ष और बलिदानों की स्तुति सामान्य परिस्थितियों में नहीं की जाती है अथवा कम की जाती है।

वह भी विभिन्न रूपों में स्त्री तथा समाज के लिए अपना एक अलग महत्व रखता है तथा परिस्थिति के अनुसार अपने संघर्ष, त्याग एवं बलिदान से स्त्री तथा इस समाज को संभालने का कार्य करता है। वह भी एक पुत्र, भाई, प्रेमी, पति तथा पिता के रूप में स्त्री का पूरक है।

यह कविता पुरुष के सामर्थ्य और पुरुषार्थ पर प्रकाश डालती हैं तथा एक स्त्री के लिए पुरुष के महत्व को और अधिक स्पष्ट रूप से उजागर करती है।

इस कविता में संपूर्ण पुरुष जाति को संबोधित करते हुए कवि कहता है............

मानुष तुम बलशाली निकले

हे पुरुष तुम्हारे पौरुष को,अभिवादन शत–शत बार करूँ
कि बांध सकूं उसे शब्दों में, कैसे इतना आकार करूं
आदिकाल से वर्तमान तक, कार्य कौन न कर पाए तुम ?
अघटित घटित किया है तुमने, कैसे ना मैं स्वीकार करूं?

नारी के गिरते अक्षुनीर के, आश्रय का स्कंध हो तुम
प्रेमभाव के श्वेत वर्ण में, संग विचरण की सौगंध हो तुम
अवसाद निराशा के बल से, जो कभी शिथिल न होते हैं
जीवंत करें फिर जीवन उसका, कुछ ऐसे प्रतिबंध हो तुम
अवसाद निराशा का तम हरने, तुम उसकी रात उजाली निकले
आशाओं के भार संभाले, मानुष तुम बलशाली निकले

स्वयं सुता के खेल खिलौने, सह उदरा की राखी तुम
कांता के सौभाग्य तुम ही हो, सप्त वचन के साखी तुम
जिस माता के रहे खिलौने, तुम अपने शैशव में कल
अब उसकी सेवा में तत्पर, बूढ़ी माँ की बैसाखी तुम

वह देख न पाती यूँ सब कुछ, दृष्टि सुधारक यंत्र हो तुम
अतिरिक्त शक्ति के तुम संवाहक, नव ऊर्जा के तंत्र हो तुम
यूँ माँ शारद की वीणा है, सक्षम और प्रवीणा है
पर शतगुणित करें जो क्षमता को, ऐसे सम्यक मंत्र हो तुम
संवर्धन उपकरण बने तुम, बेहद प्रतिभाशाली निकले
आशाओं के भार संभाले, मानुष तुम बलशाली निकले

सामर्थ्य परे तुम बोझ लिए हो, लांघ पड़े हो मानक तुम
स्तुति मिली न शब्दों में, बिन गाए आख्यानक तुम
हर रिश्ते में इस जीवन के, तुम नारी की सुनते हो
दो कदमों से दौड़ पड़े हो, बदल बदल स्थानक तुम

तुम ही नारी की रेशु हो, उसकी कोमल स्मिता हो तुम
वह खंड खंड में टूटी तुम मे, तो उसकी एक किता हो तुम
उसको खुद में जीते हो, खुद की सांस विलोपित करके
निज जलते हुए विचारों की, लपट छोड़ती चिता हो तुम
बिन सांसों के खड़े खंडहर, पर नगर सदा वैशाली निकले
आशाओं के भार संभाले, मानुष तुम बलशाली निकले

हर कदम पे उसके साथ चले हो, ऊंची नीची राहों में भी
हाथों में हाथ लिए बढ़े हो, सच्चाई में अफवाहों में भी
स्तनपान से राखी तक, मंगलसूत्र से सुतादान तक
हर रिश्ते में साथ बहे हो, भावों के तीव्र प्रवाहों में भी

खुद को ही तुममे देखा है, तुम रहे निरंतर दर्पण हो
खुद को उसमें जीवित रखकर, प्रतिपल करते तर्पण हो
कर बेल मनोरथ सिंचित उसकी, फल आशीष के लेते हो
रक्षक उसकी मुस्कानों के, अनगाया एक समर्पण हो
मुस्कान देखकर उसकी तुम, बजने वाली ताली निकले
आशाओं के भार संभाले, मानुष तुम बलशाली निकले

शायद ज्ञात नहीं तुमको है, तुम नारी के कौन हो?
साथ रहो तो जिह्वा का स्वर, अनुपस्थिति में मौन हो
जन्म सुवासित करते हो, जुड़कर करते मजबूत उसे
तुम ही सुगंधित चंदन उसके, दृढ़ता के सागौन हो

बारह महिने तुम फिरते हो, शीत घाम चौमासा मे
लोलक सम दोलन करते हो, दो पैसे की प्रत्याशा में
तन में श्रमकण, पांव में छाले, श्यामल मुख झुर्री को पाले
अपनों की हँसी – खुशी लिखते हो, अपनी खुद की परिभाषा में
श्वास आखिरी तक देते फल, जाने कौन सी डाली निकले
आशाओं के भार संभाले, मानुष तुम बलशाली निकले

पूर्वकथन - तेरा छोर

किसी सिक्के के दो पहलू होना सदैव से ही एक शाश्वत एवं स्थापित सत्य रहा है। इसी के क्रम में जिस प्रकार से एक पुत्र के लिए माँ का महत्व बहुत अधिक होता है ठीक उसी प्रकार एक पुत्र भी जन्म से ही अपनी माँ के लिए सर्वोच्च प्राथमिकताओं में से एक होता है। वह अपनी माँ को उसके बचपन की पुनः सैर करने वाला मार्ग होता है। वह उसकी हँसी, उसकी खुशी, उसके दुख, उसके उत्साह, उसकी ऊर्जा, उसकी शांति एवं अशांति सब कुछ होता है। यद्यपि शैशवकाल में पुत्र प्रत्यक्ष रूप से कोई भी कर्म या गतिविधि नहीं करता है,फिर भी उसकी उपस्थिति ही माँ की संजीवनी होती है। माँ अपने दिन भर की सारी कामकाजी थकावट के बाद सुकून के लिए अपने लल्ला को ढूँढ़ती फिरती है। पुत्र का भोलापन ही माँ को मुस्कान तथा भावनात्मक प्रस्फुटन देता है। पुत्र माँ के लिए उसके बुढ़ापे की लाठी तथा माँ के नैतिक पोषण का च्यवनप्राश होता है।

यह कविता एक माँ के लिए उसके बेटे के महत्व को प्रदर्शित करने का एक छोटा सा प्रयास है।

इस कविता में माँ को संबोधित करते हुए कवि कहता है.......

तेरा छोर

गोद में तेरी आते से ही, लल्ला तुझको प्यारा है
गर्भकाल से ही उसने, तेरा बिखरा हर्ष संवारा है
अपनाया है तुमने उसको, अपने खेल खिलौनों में
तेरे बुढ़ापे की लाठी, उसने होना स्वीकारा है

उसी से जीवित होती ममता, और उसका अमरत्व है वो
दृष्टिपात से मिलने वाला, तेरा पोषक तत्व है वो
गुणवान बनाती आई उसको, अपने दौर प्रबलता में
दुर्बल तेरी अवस्थाओं में, संचित होता स्वत्व है वो
दुर्बलता के हालातों में, मजबूती की डोर है
एक छोर तुम ठहरी उसका, वह तेरा एक छोर है

वह निंदिया तेरी आंखों की, वही उन्हीं का सपना है
सारे घर में चौन खोजते, तुझे लल्ला – लल्ला जपना है
उसके पालन पोषण खातिर, तुमने जितने पाठ लिखे
उसके व्यवहार के कागज में, उन सब पाठों को छपना है

घोर निराशा के तिमिरो में, आलोक का वैदिक मंत्र है वो
मुस्कानों के उत्पादन का, विकसित होता संयंत्र है वो
बोझ काम का या कुछ चिंता, कभी शिथिलता लाए तो
ऊर्जा वाहक स्फूर्ति प्रवर्धक, त्वरित काम का यंत्र है वो
ऊर्जा स्फूर्ति के वितरण में वो, करता कभी न शोर है
एक छोर तुम ठहरी उसका, वह तेरा एक छोर है

उसके चेहरे का भोलापन, कभी तो तेरा हर्ष हुआ
कभी गुदगुदी गालों की, तो कभी अश्रु स्पर्श हुआ
इसी हर्ष – स्पर्श से तेरा, जीवन भरा विचारों से
भीड़ों में वो रहा चुलबुला, एकांत में तेरा विमर्श हुआ

मुस्कान देखकर उसकी तुम, सदा ही चिंताहीन हुई
उसके सप्त वर्ण से ही तुम, श्वेता से रंगीन हुई
तेरी खुशियों में गाढ़ापन, हिना के जैसे आया है
मातृत्व रचित पाषाणों से तुम, पिसकर अधिक महीन हुई
अधिक महीन पिसे जाने पर, तू हुई नहीं कमजोर है
एक छोर तुम ठहरी उसका, वह तेरा एक छोर है

पहले तुम उसकी मैया हो, और वह तेरा बालक है
पश्चात में तेरे सभी दुखों का, मूल मिटाता घालक है
फिर तुमको जी कर अपने हिस्से, के कर्तव्य निभाता है
जीवन के अंतिम पड़ाव में, वही तुम्हारा पालक है

प्रथम रश्मि है भोर की तेरी, वो ही तेरी शाम भी है
वही तुम्हे देता है गतियाँ, वही तेरा विश्राम भी है
माटी भी है उसी ने खाई, दो वचन तुम्हारे मानें हैं
वही कन्हैया तेरा है तो, वही तुम्हारा राम भी है
अपने राम कन्हैया ताके, तू होती गई चकोर है
एक छोर तू ठहरी उसका, वो तेरा एक छोर है

पूर्वकथन - जरूरी घूँट

भारतीय समाज में भाई–बहन का रिश्ता बहुत प्रगाढ़ तथा आत्मीय माना जाता है। दोनों अपनी–अपनी भूमिकाओं में एक दूसरे के पूरक भी होते हैं। जहाँ बहन एक ओर भाई के लिए त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति मानी जाती है वहीं दूसरी ओर भाई, बहन की सुरक्षा और मान प्रतिष्ठा की खातिर काल से भी लड़ने को सदैव तैयार रहता है। भाई बहन में तीखी – मीठी नोक झोंक एवं तकरार उनके बीच के रिश्ते को भावनात्मक मजबूती देती है। भाई अपने प्राणों की भी परवाह न करते हुए अपनी बहन पर आने वाले सभी संकटों का सामना करता है। बहन के लिए भाई का महत्व इससे और भी अधिक स्पष्ट होता है कि अपने माता–पिता के न रह जाने पर वह अपने भाई में ही अपने माता–पिता की छवि को देखती हैं तथा ससुराल जाने के बाद भी रक्षाबंधन के त्यौहार के दिन उसकी राह तकती रहती है।

यह कविता बहन के लिए भाई का महत्व बताती है।

इसमें बहन को संबोधित करते हुए कवि कहता है.....

जरूरी घूँट

तुझसे उसका नाता तो, आजीवन रहा है कूटों सा
प्रत्यक्ष कभी न बोली कुछ भी, वह सब पढ़ गया अकूटों सा
आवश्यकता के सभी जलाशय, जब–जब आग उगलते हैं
जलपात्रों में पड़ा मिले वह, तुझे जरूरी घूंटो सा

तेरे सर की वह छतरी है, बारिश में भी धूपों में भी
कठिन समय में हल बन आए, छोटे बड़े स्वरूपों में भी
विपदा जब ज्वाला सी बनकर, गिरे निरंतर अंबर से
खुद जल बनकर आग बुझाता, संकट के बड़े प्ररूपों में भी
जल बनकर वह आग बुझाए, ऐसे सरल स्वभाव सा है
तुझे पूर्ण सा करके वह तो, लगता स्वयं अभाव सा है

यदि वो तुझसे रूठ गया तो, कुछ तुझे न अच्छा लगता है
उसे मनाने की खातिर फिर, आती बहुत सजगता है
तेरे नेह की छाया में वह, जब भी हंसकर लौट पड़े
अग्र नासिका स्थित गुस्सा, उल्टे पांवों को भगता है

कंटक वाले मार्ग में तेरे, सदा तेरे पदवेशों सा है
तेरे मुख से बाहर निकले, पालनार्थ आदेशों सा है
किसी जोश को खुद में धारे, कठिन काल जब तुझ तक आए
उनकी ही तासीर संभाले, प्रतिकर्षी आवेशों सा है
कठिन कल को प्रतिकर्षी है, तुझसे बहुत लगाव सा है
तुझे पूर्ण सा करके वह तो, लगता स्वयं अभाव सा है

क्रंदन से तुझे हास्य मे लाना, यह उसका आलेख था
कितने दिए खिलौने तुझको, यह मानस अभिलेख था
उसके रोने पर तेरी, आंखों में आंसू का आना
तुम दोनों के एक नाल से, जुड़ने का उल्लेख था

शहर की सूनी गलियों में वह, तुझे सुरक्षा देता है
नैतिक पतन की मंडी में वह, हर जोखिम का क्रेता है
इन गलियों का काला धब्बा, अगर कभी भी उछला तो
अरुण हुआ वह शोणित से पर, तुझको रखता श्वेता है
तुझको श्वेत किए रहने में , उपजे कोई घाव सा है
तुझे पूर्ण सा करके वह तो, लगता स्वयं अभाव सा है

इस देहरी से परे देखकर, जानी तेरी भलाई है
तुझे विदा करते ही उसको, यादें तेरी आई है
किसी नई चौखट में जब तुम, राह तको उसके आने की
तेरा धागा जिसे ढूंढता, ऐसी सुदृढ़ कलाई है

उनके न रह जाने पर तो, वह बाबा वह मैया सा
मां की ही पुचकार है वो, बाबा के सख्त रवैया सा
तेरे मान की रक्षा करने, जब भी समाज यह मौन रहा
अग्निसुता सी जान के तुझको, आया कृष्ण कन्हैया सा
अस्त समाज के मौनों में वह, उगते हुए प्रभाव सा है
तुझे पूर्ण सा करके वह तो, लगता स्वयं अभाव सा है

पूर्वकथन - प्रेमबाग

किसी पुरुष के संपूर्ण विकास में उसके शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक विकास की भी कई अवस्थाएँ व सोपान होते है। प्रत्येक अवस्था एक विशिष्ट महत्व रखती है। संपूर्ण विकास की इस श्रृंखला में एक अवस्था होती है जिसे हम किशोरावस्था के नाम से जानते हैं तथा इसका सोपान होता है– प्रेम। किशोरावस्था को मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भी विकास की सर्वाधिक संवेदनशील अवस्था माना गया है। इस अवस्था को सर्वाधिक भावनात्मक उथल–पुथल का दौर कहा जाता है। जब किशोर प्रेम में होता है तो वह परिवार व समाज से अलग होते हुए भी अपने आप में संपूर्ण होता है। अपनी प्रेमिका के साथ भ्रमण करने वाले इस पर्यटन में एक प्रेमिका के लिए उसका क्या महत्व होता है, क्या अस्तित्व होता है, यह प्रेमिका से बेहतर शायद ही कोई जानता हो।

वह एक आँधी की तरह आता है और उसे एक पत्ते की तरह अपने साथ उड़ा ले जाता है। वह अपने आप को उसमें खपा देता है। अपना एक–एक पल उसे सौंप देता है और खुद उसमें बस जाता है।

इस प्रेम पर्यटन में प्रेमिका के लिए प्रेमी के महत्व को बतलाती हुई यह कविता है। इस कविता में प्रेमिका को संबोधित करते हुए कवि कहता है.......

प्रेमबाग

आता है जो ख्वाब में तेरे, उसका स्वरूप साकार सा है
ख्वाबों से फिर बाहर आकर, लेता नया आकार सा है
उसके आने से जीवन में, तेरे खुशबू फैली है
तू हुई सुनहरी उसमें घुलकर, बचपन की यादें मैली है
पहले वह निषेध था तेरा, फिर जाकर स्वीकार हुआ
हृदय अंकुरित बीज था वो फिर, प्रेम वृक्ष विस्तार हुआ
इसी पर्यटन में उसने, भरपूर तुम्हें ही सींचा है
जिसमें हरित चली आई तुम, वह ऐसा प्रेम बगीचा है
खुद चकोर तुझे चंदा करके, वह तकता आसमान है
उसके चकोर हो जाने में ही, तुझ चंदा का मान है
उसका खुद चकोर हो जाना, उसका ही संकल्प है
तुम भले रखो उसको वर्षों में, तू उसका पूरा कल्प है

पहला स्पर्श ही उसका तुझको, देता नया आयाम है
रूप निखारे तेरा प्रतिदिन, वो ऐसा व्यायाम है
बचपन के पतझड़ में गिरती, तुम कोई सी पत्ती से
तेरे दिल की स्लेट में लिखता, खुद को प्रेम की बत्ती से
वह साथ तुम्हारे उड़े गगन में, साथ बहे जलधारों में
तुम उसको हर रोज निहारो, अपने ही श्रृंगारों में
जलधारों में वह भारी है, मुक्त गगन में हल्का सा है
कई मर्तबा सूनेपन में, तेरी आंखों से छलका सा है
निशा के सूनेपन में वह तो, तेरा बनता तल्प है
तुम भले रखो उसको वर्षों में, तू उसका पूरा कल्प है

खुद को तुम्हें समर्पित करके, वह बना प्रेम पर्याय हुआ है
छुप छुप कर तुम जिसको पढ़ती, ऐसा एक अध्याय हुआ है
इस अध्याय में तेरी नींदे, तेरे सपनों की विषय वस्तु है
हृदयतली की ध्वनियाँ बोलीं – निर्विवाद सब एवमस्तु है
वही सुकून है तेरा राधिका, वही तेरी बेचौनी भी है
दूर्वा की है वही मृदुलता, शूलों सा वह पैनी भी है
उसके बोल तेरे कानों में, घुलने वाली मिसरी है
इस मिठास के बंधन में तू, सारी दुनिया बिसरी है
सब मीठापन तुझे सौंप के, बचता फिर अत्यल्प है
तुम भले रखो उसको वर्षों में, तू उसका पूरा कल्प है

घर वालों की जुदा थी खुशियाँ, वह तेरा त्यौहार रहा है
उससे मिलना बातें करना, तेरा पोषण आहार रहा है
धूल झोंक कर सबकी आँखों, तू मिलने बेधड़क चली
लीक बनाई लोगों की तू , छोड़ के अपनी सड़क चली
उसकी नींद चौन के बदले, वह तेरी संचित निधि हुआ
तुझको केंद्र मानकर अपना, वह प्रतिदिन तेरी परिधि हुआ
प्रणय अवधि में वह गुलाब था, नौ रातों परणाम रहा है
तुम रही राधिका उसकी अस्मि, वह तेरा घनश्याम रहा है
प्रणय अवधि से नौ रातों तक, चलता हुआ प्रकल्प है
तुम भले रखो उसको वर्षों में, तू उसका पूरा कल्प है

पूर्वकथन - शुष्क कंठ की प्यास

विवाह उपरांत जब एक लड़की किसी नई चौखट में प्रवेश करती है तो वह स्वयं को बहुत असहज महसूस करती है। उसकी इस असहजता को सहजता में परिवर्तित करने का दायित्व उसके पति का होता है। इस दायित्व को वह उसकी अपेक्षा एवं आशा से कई गुना बेहतर तरीके से निभाता है। एक पत्नी के लिए पति, उसके अकेलेपन का सबसे बेहतर साथी होता है। वह उसकी खुशियाँ तथा उसके सपनों का बराबर का सहभागी होता है। वह अन्याय की स्थिति में उसके हितों का संरक्षक भी है। विपरीत तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में पत्नी का बिखराव होने पर वह उसके साथ में जुड़कर उसे संवारने और निखारने में सहायक है। पत्नी की पीड़ा और दर्द को स्वयं में उतनी ही तीव्रता से अनुभूत करता है। वह उसका श्रृंगार भी है, उसका मौन भी है और उसकी वाणी से निकलने वाला शब्द भी है। पति–पत्नी के कम अभिव्यक्त किए जाने वाले प्रकरण में पत्नी के लिए पति का महत्व इस कविता के माध्यम से आप तक पहुंचाने का एक छोटा सा प्रयास किया गया है।

इस कविता में पत्नी को संबोधित करते हुए कवि कहता है........

शुष्क कंठ की प्यास

तेरी नई नवेली चौखट, में तेरी वह गति हुआ
ढाल बना वो तेरी हरदम, अन्याय यदि जो अति हुआ
खड़ी सीढ़ियां दायित्वों की, यदि कभी न चढ़ पाई तुम
खुद को थोड़ा अवनत करके, तुझे सहायक नति हुआ

नहीं किसी से कह पाई जो, उससे जाकर बोल सकी
बोझिलता के घूँटो में, दो दाने शक्कर घोल सकी
बेचौनी के सभी समंदर, तुमने उतर के देखे हैं
थाह कहीं न मिलने पर तुम, उसमे खुद को टटोल सकी
थाह तुम्हें वो देकर तेरी, सांसों का उल्लास हुआ है
संतृप्ति घूंट तुमको देकर के, शुष्क कंठ की प्यास हुआ है

आधी खुशियां आधे सपने, तेरा आधा अंग भी है
रौशन रात दिवाली की वह, होली के सारे रंग भी है
अधिकारों के विन्यासों में, दूषित भाव जो आए तो
अधिकारों की खातिर तेरे, छिड़ने वाली जंग भी है

तेरे बाजू का कदम वही है, तेरे हाथों में हस्त भी है
वही तुम्हारी संतुष्टि है, वैभव तेरा समस्त भी है
तेरे बिगड़े हालातो में, तुझे नया आकार भी दे
तुझे मरम्मत करते–करते, वह थोड़ा क्षतिग्रस्त भी है
तुम्हें मरम्मत ,खुद को क्षतियाँ ,ऐसा एक अभ्यास हुआ है
संतृप्ति घूंट तुमको देकर के, शुष्क कंठ की प्यास हुआ है

तुम देखो उसको बिंदी में, तुम देखो उसको कंगन में
सम्मुख रहो जो दर्पण के तो, फिर देखो देह के अंगन में
बिन उसके एकांत में जब तुम, नदी किनारे बैठी हो
दूर से तुम तक आने वाली, फिर देखो सभी तरंगन में

तुम्हें सहारा देने वाले, कुछ हाथों में यक भी है
पाणिग्रहण से प्राणहरण तक, संचित होता देयक भी है
विपरीत काल में तेरे छोटे, बड़े सभी हितों की खातिर
बारात भरी उस संसद से, पारित हुआ विधेयक भी है
ब्रह्म मुहूर्त उस संसद से, करतल ध्वनि का अनुप्रास हुआ है
संतृप्ति घूंट तुमको देकर के, शुष्क कंठ की प्यास हुआ है

तेरे हर गतिशील कदम में, तुझे सहायक सिद्ध हुआ
बिखराव में तेरे तुझसे जुड़ के, साथ में तेरे बिद्ध हुआ
विपदा जब भी त्वरित गति से, तेरी ओर को आई है
तुझ तक आने वाली भीषण, बला का मार्ग निषिद्ध हुआ

मौन भी तेरा शब्द भी तेरे, जब से तुझको ब्याहा है
तेरी मांगों के उदर भरण में, संध्या तक चरवाहा है
दैहिक पीड़ा के बंधन में, जब थोड़ा भी तड़पी हो
तुम्हें ज्ञात है तुम जितना ही, दर्द में साथ कराहा है
तुम्हें सती, खुद को शिव करके, शोकाकुल कैलाश हुआ है
संतृप्ति घूंट तुमको देकर के , शुष्क कंठ की प्यास हुआ है

पूर्वकथन - स्मारक

एक बेटी के लिए उसके पिता के महत्व और स्थान को उसके पिता की तकलीफों के दौरान बेटी की आँखों में आने वाले आंसुओं से आसानी से पूर्ण स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है। बेटी यह बहुत अच्छी तरह से जानती और समझती है कि एक पिता किस प्रकार से अपनी बेटी को अपने बगीचे के एक छोटे से पौधे की तरह पाल पोषकर बड़ा करता है। पिता अपने शारीरिक एवं मानसिक कष्टों को भूल कर अपनी पुत्री को बेहतर शिक्षा प्रदान करता है। बेटी के बड़े होने पर पिता के संस्कार उसके व्यवहार से ही प्रदर्शित होते हैं। वह अपनी बेटी के लिए सही जीवनसाथी ढूँढ कर अपने जीवन भर की कमाई उसके विवाह में खर्च कर देता है और बेटी को कुछ देने की प्रथा या परंपरा को वह अपनी अंतिम सांसों तक भी निभाता है।

प्रस्तुत कविता एक बिटिया के जीवन में उसके पिता के महत्व को दर्शाती है।

इस कविता में बेटी को संबोधित करते हुए कवि कहता है........

स्मारक

उसके बाग का एक विटप तुम, और वो तेरा माली है
भरपूर तुझे करने की खातिर, हुआ निरंतर खाली है
ज्ञान कला और नैतिकता से, तेरी जड़ों को पोषण देकर
संस्कारों की उर्वरता से, समृद्ध बनाता डाली है

तेरे हितों की रक्षा खातिर, प्रबल बहुत है शक्ति में
हृदयतली में तुझको रखता, है प्रगाढ़ अनुरक्ति में
अपनी आंखों में वह कोई, सागर जैसे गहरा है
बिल्कुल किसी ताल के जैसा, उथला है अभिव्यक्ति में
इस उथलेपन में भी वह तो, गहराई विस्तारक है
संघर्ष – त्याग का हृदय में तेरे निर्मित होता स्मारक है

तेरे कंधों पर टांगा जब, उसने पुस्तक –झोला है
अपने सोते ख्वाबों को, जाकर के पुनः टटोला है
गुणित किया है उसने हरदम, तेरी सारी क्षमताओं को
भले पांव में पड़े हैं छाले, या हाथ में पड़ा फफोला है

तेरा आधा अंग ढूँढता, गाँव – शहर के रस्ते में
बेमेलों को छोड़ के आता, सीधे सरल नमस्ते में
जोड़ी सही मिलाने खातिर, खुद को गिरवी रखता है
बेशकीमती हीरे जड़ता, सब तेरे गुलदस्ते में
ऐसे रत्न से तुझे सुसज्जित, करने वाला श्रृंगारक है
संघर्ष – त्याग का हृदय में तेरे निर्मित होता स्मारक है

उसके मानस सदा रही तुम, नहीं ताज नहीं तख्त रहा है
प्रेम में ढीला वह पतंग सा, अनुशासन में सख्त रहा है
तुझको शीतल छाँव सौंपने, जड़ों को अपनी गहरी करके
एक छोर से बढ़कर भी वह, कटता हुआ दरख्त रहा है

तुझको ज्वर आने पर बेशक, मैया ने माथा चूमा है
बिना छुए तुझको ही मन, व्याकुलता में उसका झूमा है
तेरी खातिर ऐसे में भी, पांव न उसने रोके हैं
मानस में तुझको रखकर, वह गली–गली में घूमा है
उच्च ताप के सभी ज्वरों में बनता स्वयं निवारक है
संघर्ष – त्याग का हृदय में तेरे निर्मित होता स्मारक है

संघर्ष से उसके तेरी दृढ़ता, वह दृढ़ता का टीका है
बाद के तेरे व्यवहारों से, उसका दिखे सलीका है
'ए बिटिया' कहकर उसने जब, कभी भी तुझे पुकारा है
तेरी खातिर फिर गीता का, सारा ज्ञान भी फीका है

उसका हाथ है जब तक सर पर, तुझ तक नहीं व्यथाएं हैं
तेरे – उसके संबंधों की, हर युग कोटि कथाएं हैं
सारी निधियां तुझे सौंप कर, भी शेष रह गया देने को
उसकी अंतिम सांसों तक भी, चलती संग प्रथाएं हैं
तेरे लिए ही अंतिम सांसों, का बनता खुद निर्धारक है
संघर्ष – त्याग का हृदय में तेरे निर्मित होता स्मारक है